२०९ वाँ कलश।

सुखं दुःखं योनौ सुकृत-दुरित-व्रात-जनितं,
शुभाभावो भूयोऽशुभपरिणतिर्वा न च न च।
यदेकस्याप्युच्चैर्भव-परिचयो बाढ-मिह नो,
य एवं सन्न्यस्तो भवगुणगणैः स्तौमि तमहम्।।२०९।।

श्लोकार्थ :... अरे! यह उत्पत्ति! **योनि में सुख और दुःख सुकृत और दुष्कृत के समूह से होता है...** आहाहा! चौरासी लाख योनि में अनन्त बार अवतरित होना, यह शुभ-अशुभभाव से होता है। आहाहा! निगोद की बात देखो न! वह अशुभभाव से गया न? एक निगोद लहसुन और प्याज, उसमें एक श्वास लें, उसमें अठारह भव होते हैं। आहाहा! भगवान की वाणी में भगवान ने कहा है। एक श्वास में अठारह भव, उसका एक अन्तर्मुहूर्त अड़तालीस मिनिट। अन्तर्मुहूर्त अड़तालीस मिनिट। मुहूर्त तो दो घड़ी। यह तो अड़तालीस मिनिट के अन्दर। अन्तर्मुहूर्त में निगोद के भव। अशुभ से आया है न यहाँ? अशुभ से। आहाहा! ६६३३६ भव करता है। आहाहा! बहुत काल तो निगोद में गया। आहाहा! निगोद में तो अकेला अक्षर के अनन्तवें भाग का उघाड़, बाकी सब दुःख। आहाहा! अन्दर भाव में दुःख, हों! संयोग का नहीं। नारकी को कहीं संयोग का दुःख नहीं है। संयोग के लक्ष्य का दुःख है। उस पर लक्ष्य करता है, वहाँ आर्तध्यान और रौद्रध्यान होते हैं। आहाहा! संयोग को तो स्पर्श भी नहीं करता।

कहते हैं, उस निगोद में... **योनि में सुख और दुःख सुकृत और दुष्कृत...** शुभभाव और अशुभभाव, इनका समूह। अनन्त बार असंख्य शुभभाव हुए और अनन्त बार अशुभभाव हुए। इसलिए उनके **समूह से होता है...** आहाहा! देखो? **सुकृत और दुष्कृत के समूह से होता है...** सुकृत और दुष्कृत, शुभभाव और अशुभभाव अनन्त बार किये हैं। वह कोई धर्म नहीं है, वह कोई चीज़ नहीं है। आहाहा! ब्रजलालजी! ऐसा वहाँ कभी सुना नहीं। आहाहा! ऐसी बात, भगवान! ऐसी कठिन बात है। अभी वस्तु बदल गयी है। आहाहा!

सवेरे पढ़ते हुए ख्याल आया कि ओहो! एक अन्तर्मुहूर्त में, ४८ मिनिट में, ४८ मिनिट के अन्दर। अन्तर्मुहूर्त तो ४८ मिनिट होवे, तब अन्तर्मुहूर्त होता है। उसके भी अन्दर... आहाहा! निगोद का एक श्वास ले, उसमें १८ भव; ऐसे एक अन्तर्मुहूर्त में ६६३३६ भव! गजब बात, बापू! प्रभु ने देखा है, केवली ने देखा है। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... आदिरहित काल। कहीं आदि कहां है? यह अनादि-अनन्त, ऐसे एक अन्तर्मुहूर्त में इतने भव ऐसे अनन्त बार किये। आहाहा! और यहाँ जरा आवे, वहाँ सुविधा में रुक जाए, प्रसन्न हो जाए। आहाहा!

कहते हैं कि योनि में, इन उपजने के स्थानों में निगोद आदि में या चौरासी लाख की योनि में **सुख और दुःख सुकृत और दुष्कृत के समूह से होता है...** यह योनि में सुख और दुःख होते हैं, वे शुभ और अशुभभाव के समूह से होते हैं। आहाहा! **(अर्थात् चार गति के जन्मों में सुख-दुःख शुभाशुभ कृत्यों से होता है)**। कोष्टक में है न? **(चार गति के जन्मों में...)** आहाहा! **(सुख-दुःख शुभाशुभ कृत्यों से होता है।)** यहाँ तो दया, दान, व्रत, भक्ति शुभभाव हैं, वे अनन्त बार किये हैं। आहाहा! और अनन्त बार उस शुभभाव का फल मनुष्य या स्वर्ग इसे प्राप्त हुआ है। अशुभभाव का फल यह निगोद और एकेन्द्रियादि प्राप्त हुए हैं। आहाहा! अनादि काल—आदिरहित काल। यह भव है, इसके पहले भव... इसके पहले भव।...फिर कहीं भव का अन्त है कि यह अन्तिम भव अनादि में? आहाहा! ऐसे अनन्त अनादि भव में योनि में उत्पन्न हुआ, वह सुकृत और दुष्कृत के कारण से। उसके कारण से सुख और दुःख होते हैं। आहाहा!

अन्तर्मुहूर्त में 66 हजार निगोद के भव करे, वह दुःख कितना होगा? जिसे अक्षर के अनन्तवें भाग का ही उघाड़ है। आहाहा! अभी यह बाहर जानपने का उघाड़ दिखता

है न ? उसका (निगोदिया का) उघाड़ उसे तो अक्षर के अनन्तवें भाग एक जरा-सा है। आहाहा! द्रव्य है, वह परिपूर्ण भगवान अन्दर है, परिपूर्ण प्रभु है, परन्तु पर्याय में अक्षर के अनन्तवें भाग विकास जो यह बाहर से उघाड़ दिखता है, ऐसा उसे कम उघाड़ है। उसमें अनन्त बार जा आया है। आहाहा!

(अर्थात् चार गति के जन्मों में सुख-दुःख शुभाशुभ कृत्यों से होता है)। और दूसरे प्रकार से... देखें तो **आत्मा को शुभ का भी अभाव है।** वस्तु में तो अभाव है। आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञान का सागर, अतीन्द्रिय आनन्द का समुद्र प्रभु, उसमें तो शुभ और अशुभ है नहीं। वस्तु में शुभ-अशुभ है नहीं। वह पर्याय में नये उत्पन्न करता है और सुख-दुःख को भोगता है। आहाहा! **(-निश्चयनय से), आत्मा को शुभ का भी अभाव है...** 'भी' क्यों कहा ?—कि उन्हें अशुभ कहना है। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव वस्तु में नहीं है। वह तो विकार अवस्था ऊपर की है। आहाहा! पर्याय में है और पर्याय में अब अनन्त सुख-दुःख भोगनेवाला है। आहाहा! द्रव्य में वह शुभ-अशुभभाव भी नहीं है, इसलिए उसे द्रव्य में सुख-दुःख का भोगना भी नहीं है। आहाहा! द्रव्य तो सच्चिदानन्द प्रभु, अनन्त आनन्द का नाथ... आहाहा! अखण्डानन्द अनादि-अनन्त द्रव्य वस्तु पड़ी है। यह सब पर्याय—अवस्था की बातें हैं। आहाहा! इस अवस्था में अवतार, अवस्था में संसार और अवस्था में मोक्षमार्ग तथा अवस्था में मोक्ष। यह सब अवस्था में-पर्याय में है। है ?

आत्मा को शुभ का भी अभाव है... दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के शुभभाव, भगवान का स्मरण करना आदि, परन्तु इस शुभभाव का द्रव्य में तो अभाव है। वह पर्याय में है; वस्तु में नहीं। आहाहा! **तथा अशुभ परिणति भी नहीं है—नहीं है,...** यहाँ दो बार डाला है। आहाहा! द्रव्यस्वभाव में **अशुभ परिणति भी नहीं है—नहीं है,...** अशुभ अवस्था। वस्तु सच्चिदानन्द द्रव्य तत्त्व वस्तु है, वह तो सकल निरावरण अखण्ड एक अविनाशी परम शुद्धपारिणामिकभाव लक्षण निज परमात्मद्रव्य है। आहाहा! उसे तो शुभ और अशुभ का भाव वस्तु में नहीं है। पर्याय में है; इसकी अवस्था में है, हालत में, पलटती दशा में वह है। उसमें वह शुभ-अशुभभाव होता है, उसके सुकृत और दुष्कृत दुःख भोगता है। आहाहा!

कभी ऊँचा सिर किया नहीं। कि मैं कौन हूँ? मैं कौन हूँ? कहाँ से आया हूँ? कहाँ जाऊँगा? श्रीमद् ने नहीं कहा? श्रीमद् ने १६ वर्ष में कहा है।

मैं कौन हूँ? आया कहाँ है? और मेरा रूप क्या?
सम्बन्ध दुःखमय कौन है? स्वीकृत करुँ परिहार क्या?
इसका विचार विवेकपूर्वक शान्त होकर कीजिए;
तो सर्व आत्मिक ज्ञान के सिद्धान्त का रस पीजिये॥

आहाहा! १६ वर्ष में कहते हैं। शरीर की अवस्था सोलह है। आत्मा को कहाँ अवस्था है? आत्मा तो अनादि-अनन्त है। आहाहा! ऐसे में मैं कौन हूँ? कहाँ से आया? इसने कभी विचार किया? मैं आत्मा हूँ। कहाँ से हुआ?—कि अनादि का हूँ। मेरा वास्तविक स्वरूप क्या है? वास्तविक स्वरूप तो शुद्ध आनन्दकन्द, वही स्वरूप है। पुण्य और पाप के भाव, वह उसका वास्तविक स्वरूप नहीं है। वह सब तो विकृत अवस्था है। उसके कारण दुःखी है और चार गति में भटकता है। आहाहा!

क्योंकि... अशुभ की परिणति और शुभ का भाव दोनों, भगवान शुद्ध चैतन्यतत्त्व जो तत्त्व है, द्रव्य है, वस्तु है, उसमें शुभाशुभभाव का अभाव है। यह तो पर्याय में शुभाशुभ है। आहाहा! **क्योंकि इस लोक में एक आत्मा को...** आहाहा! **(अर्थात् आत्मा सदा एकरूप होने से उसे) निश्चित भव का परिचय बिल्कुल नहीं है।** आहाहा! भगवान द्रव्यस्वभाव-चैतन्यस्वभाव त्रिकाल, उसे तो भव का परिचय नहीं। उसे भव नहीं और भव का परिचय नहीं। आहा! पर्याय में भव हुए, परन्तु द्रव्य तो उस पर्याय को स्पर्श भी नहीं करता, कहते हैं। आहाहा! ऐसा अन्तर्तत्त्व पड़ा है भगवान। उसकी दृष्टि करने से जन्म-मरण मिटें - ऐसा है।

निश्चित भव का परिचय बिल्कुल नहीं है। आहाहा! भगवान द्रव्यस्वरूप जो वस्तु है, त्रिकाली सनातन। सनातन सत्य, पर्याय-अवस्था के अतिरिक्त सत् वस्तु जो है, वह एकरूप है, इसलिए निश्चित भव का परिचय बिल्कुल नहीं है। आहाहा! ऐसे अनन्त-अनन्त लहसुन और प्याज और काई... काई—यह पानी में आती है न? सेवाल। उस सेवाल के एक टुकड़े में असंख्य शरीर हैं और एक-एक शरीर में अनन्त जीव हैं। अरे! कौन माने यह बात? वीतराग परमात्मा केवली परमेश्वर ने प्रत्यक्ष देखा है और ऐसी

वस्तु है। आहाहा! कहते हैं कि ये भव हुए। परन्तु वे तो पर्याय-अवस्था में हुए। वस्तु को तो उनका परिचय बिलकुल नहीं। आहाहा! उस चीज़ को देख न! आहाहा! जिसमें भव का बिलकुल परिचय नहीं। प्रभु! ऐसी चीज़ को तू देख न! भव का अभाव करने में यह एक ही पद्धति है। आहाहा! कोई क्रियाकाण्ड यह करूँ और वह करूँ, यह सब करके भटक मरनेवाला है। आहाहा! बहुत कठिन बातें हैं। यह तो ऊपर आ गया—सुकृत और दुष्कृत। शुभ और अशुभ के फल, सुख और दुःख संसार के, वह पर्याय-अवस्था में भोगे। भगवान जो द्रव्य / वस्तु है, वह तो सनातन है, उसे भव का बिल्कुल परिचय (नहीं है)। आहाहा! कहो, पर्याय में भव है, द्रव्य में नहीं।

मुमुक्षु : द्रव्य नहीं, इसलिए तो अभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए तू द्रव्यदृष्टि कर। यदि भवरहित होना हो, प्रभु! तो वस्तु जो अनादि-अनन्त सनातन सत्य है। वह यह पर्याय बदलती है, उसमें सब संसार और भव है। भव का अभाव करना हो तो प्रभु! उस द्रव्य की दृष्टि कर। आहाहा! कि जो द्रव्य अर्थात् वस्तु भव के बिल्कुल परिचय में नहीं है। आहाहा! अब ऐसी बातें। एक तो पकड़ना कठिन, पहले तो सुनने को मिलती नहीं। क्या हो? यह तीन लोक के नाथ सीमन्धर भगवान विराजते हैं, उनकी बात है। यह वहाँ से आयी हुई बात है। आहाहा!

कोई कहे कि यह सुख-दुःख जो तूने अनन्त बार और अनन्त काल भोगे, उसका कारण तो तेरे शुभाशुभभाव हैं। आहाहा! उनका कारण द्रव्य नहीं। आहाहा! वह यह क्या है? द्रव्य और पर्याय और... आहाहा! भगवान! तेरा स्वरूप द्रव्यरूप है, पर्यायरूप भी है। प्रमाण का विषय द्रव्य और पर्याय दोनों हैं। निश्चय का-शुद्धनिश्चय का विषय अकेला द्रव्य, उसमें शुभाशुभ पर्याय का विषय ही नहीं। पर्याय का विषय देखे, तब शुभाशुभ भाव होते हैं। आहाहा! विषय क्या? और नय क्या? आहाहा!

पहले बात की। सुख-दुःख को भोगने के लिये अनन्त बार जीव ने शुभ और अशुभ किये, परन्तु वापस कहा, प्रभु! तुझे शुभ-अशुभरहित होना हो तो द्रव्य है, उसमें शुभ-अशुभ है नहीं। आहाहा! वस्तु पड़ी है भगवान सनातन सत् अस्तिवाली सत्ता चीज़ आत्मा है, उसका ज्ञान और आनन्द आदि स्वभाव त्रिकाल है। वह द्रव्य और गुण तो... आहाहा! भव की पर्याय के शुभाशुभ कारण, उन्हें वह स्पर्श ही नहीं करता। आहाहा! ऐसा

कहने का आशय ऐसा है कि ऐसे भव तूने किये, वह यदि अब न करना हो तो द्रव्य पर दृष्टि दे कि जिसमें भव नहीं है। आहाहा! समझ में आया, भाई? यह ऐसा अलग प्रकार है। वहाँ अहमदाबाद में कभी सुना नहीं। बहुत फेरफार हो गया है। हमको तो खबर है, यहाँ ९१ वर्ष हुए। ७० वर्ष से तो यह लगायी है। आहाहा! अरे रे! यह (मूल) वस्तु कहाँ रह गयी? सत्य भगवान तीन लोक के नाथ तीर्थंकरों ने मूल तत्त्व कहा, उसे छोड़कर (दूसरी सब) बात। यहाँ नहीं कहा?

शुभाशुभभाव से, सुकृत-दुष्कृत से सुख-दुःख होगा। अब इसका अर्थ क्या हुआ? जो कुछ तेरे शुभ दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यह भगवान के दर्शन, चाहे जो यात्रा (करे), उस शुभ का फल शुभ आयेगा। आहाहा! सांसारिक अनुकूल सुख मिलेगा। वहाँ भटकने का रहेगा। आहाहा! अब उसमें तुझे भटकना मिटाना हो, प्रभु! तो तेरा आत्मा जो अन्दर है, उसमें शुभाशुभ का अभाव है। आहाहा!

इस लोक में... आहाहा! **एक आत्मा को...** एक स्वरूप भगवान अन्दर चैतन्य ध्रुव नित्यानन्द प्रभु, सहजानन्द प्रभु अन्दर है, उसे **निश्चित भव का परिचय बिल्कुल नहीं है।** आहाहा! ऐसी बात भी कान में पड़ना मुश्किल पड़ती है। अन्यत्र कहाँ है? दया पालो, ऐसा करो, वैसा करो, व्रत पालो, पंच महाव्रत (पालन करो) और ऐसी सब बातें। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन बिना व्यर्थ है। चार गति में भटकने का फलता है। कठिन बात पड़ती है, प्रभु! आहाहा! **निश्चित भव का परिचय बिल्कुल नहीं है।** आहाहा! प्रभु! यदि तुझे भवरहित होना हो, ऐसे भव किये... आहाहा! एक अन्तर्मुहूर्त में कितने श्वास होंगे? यह कहीं लिखा होगा। मस्तिष्क में नहीं आया।

मुमुक्षु : ३६८५

पूज्य गुरुदेवश्री : श्वास? कहाँ है?

मुमुक्षु : हेमन्तभाई ने हिसाब करके निकाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : हेमन्तभाई ने क्या?

मुमुक्षु : हेमन्तभाई ने हिसाब करके निकाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुस्तक निकाली?

मुमुक्षु : हेमन्तभाई हिसाब करके निकालते हैं, ऐसा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ? कौन से हेमन्तभाई ?

मुमुक्षु : अपना हेमन्त गाँधी।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपना हेमन्त! हाँ, वह है अवश्य। वह मस्तिष्कवाला है। विचार बहुत करता है, वाँचन बहुत करता है, हों! उसने कब निकाला था ? अभी ? हाँ, होगा। उसे वाँचन है। हेमन्तभाई की २६-२७ वर्ष की उम्र है। मासिक ७०० का वेतन है। मुम्बई बैंक में था। छोड़ दिया। ८०० वेतन होनेवाला था। दो वर्ष में एक हजार होनेवाला था। छोड़ दिया। उसे आजीवन बालब्रह्मचारी रहना है। छोड़ दिया। अच्छा विचार किया। आहाहा!

एक श्वास में अठारह भव... आहाहा! यह श्वास, उसमें अठारह भव करे। लहसुन, प्याज और काई। पानी के ऊपर काई होती है न ? उसमें एक टुकड़े में असंख्य शरीर हैं। लहसुन का एक राई जितना टुकड़ा लो तो उसमें तो असंख्य तो शरीर हैं और एक शरीर में अभी तक सिद्ध हुए, छह महीने आठ समय में ६०८ सिद्ध होते हैं, इतनी संख्या जो सिद्ध अभी तक हुई, उससे अनन्त गुणे एक शरीर में जीव हैं। आहाहा! यह कौन माने ? लहसुन का राई जितना टुकड़ा लो तो उसमें असंख्य शरीर और एक शरीर में अभी तक सिद्ध हुए, उससे अनन्त गुणे जीव हैं। आहाहा! वीतराग की बातें केवली तीन काल-तीन लोक देखते हैं। सीमन्धर भगवान तो तीर्थंकर हैं। केवली तीर्थंकर हैं। दूसरे सामान्य तीर्थंकर... लाखों केवली, महाविदेह में विराजते हैं। सब भगवानों का यह कथन है। आहाहा! अनन्त तीर्थंकर हुए, होते हैं और होंगे, उन सबका यह कथन है। आहाहा!

निश्चित भव का परिचय बिल्कुल नहीं है। तुझे भवरहित होना हो, प्रभु! तो यह वस्तु है, उसमें भव नहीं है। निश्चित कहते हैं। निश्चित बिल्कुल। आहाहा! ज्ञायकस्वरूप जो अन्दर चिदानन्द ध्रुव नित्यानन्द प्रभु, उसे भव कैसे ? वह तो पर्याय—अवस्था—दशा—पलटन में भव है। वह पर्याय उसमें नहीं है। आहाहा! **निश्चित भव का परिचय बिल्कुल नहीं है।**

इस प्रकार जो भवगुणों के समूह से संन्यस्त है... आहाहा! भव के गुणों से जिसे त्याग है, **उसका (-नित्य शुद्ध आत्मा का)...** ऐसा जो आत्मा। आहाहा! क्या कहा ? जिसे भव में भटकने के गुण... आहाहा! उसका असंख्य समूह। शुभ असंख्य और अशुभ

असंख्य, उनका ढ़ेर। वह सब अनन्त बार किया। उसका **संन्यस्त है...** इस वस्तु में उनका त्याग है। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ प्रभु! द्रव्यस्वभाव, वस्तुस्वभाव; यह तो शुभाशुभभाव वे तो भव के गुण हैं। बापू! आहाहा! उन भव के गुणों के समूह से त्यागी है। आहाहा! यह तो बाहर के स्त्री, पुत्र छोड़कर बैठे तो त्यागी साधु हो गया। परन्तु यह अन्दर भव के भाव रहित तत्त्व है, उसकी दृष्टि बिना भव का अभाव तीन काल में नहीं होता। जिसमें भव नहीं, जिसे भव का बिल्कुल परिचय नहीं, ऐसा जो द्रव्य है, उसकी दृष्टि और अनुभव बिना भव मिटेंगे नहीं, बापू! आहाहा! ऐसी बात है। यह दुनिया का उत्साह और हर्ष में जिन्दगी चली जाती है। पूरी होगी। कहाँ जाएगा? चौरासी लाख के बड़े अवतार पड़े हैं। आहाहा!

इस भव के गुणरहित होवे तो भगवान! तू अकेला है। भव के गुण आत्मा में नहीं हैं। भव के गुण पर्याय में है। आहाहा! सूक्ष्म है परन्तु परम सत्य है, प्रभु! आहाहा! अरे! इसने कभी सुना नहीं। सुनकर इसने विचार-निर्णय किया नहीं। अरे! मैं यहाँ से कहाँ जाऊँगा? आहाहा! भाषा कैसी की है? उन **भवगुणों के समूह से संन्यस्त है...** भव के गुण अर्थात् शुभ और अशुभभाव। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोधादि परिणाम भव के गुण हैं। आहाहा! वे भव के गुण हैं। उन भव के गुणों का समूह, उनमें संन्यस्त है। भगवान अन्दर द्रव्य तो उनसे रहित है। वस्तु जो द्रव्यतत्त्व है, जो आत्मतत्त्व है, वह पर्याय से रहित है, इसलिए पर्याय में गुण है, वे अन्दर में नहीं है। आहाहा! अरे! इसके घर की बात सुनने को मिलती नहीं। सुनने को मिले तो ऊपर से निकाल डाले। हो गया। आहाहा! श्लोक कितना सरस है। नौवाँ श्लोक है। २०९। ओहोहो!

इस प्रकार जो भवगुणों के समूह से संन्यस्त है (अर्थात् जो शुभ-अशुभ, राग-द्वेष आदि भव के गुणों से—विभावों से रहित है)... प्रभु अन्दर। भगवान आत्मा त्रिकाली सनातन सत्य है, वह तो भव के गुण से रहित है। भव के भटकने के गुण वे तो पर्याय में-अवस्था में है। पलटती, बदलती दशा में है। नहीं पलटता ध्रुव जो त्रिकाल है, उसमें वे नहीं हैं। आहाहा! एक बार तो सुनकर स्थिर हो जाए, ऐसा है। आहाहा! ऐसी बात है। यह तो अपने तो व्याख्यान में बहुत बार वाँचन हो गया है।

(जो शुभ-अशुभ, राग-द्वेष आदि भव के गुणों से—विभावों से रहित है) उसका... ऐसा जो भगवान नित्य द्रव्य उसे, जिसमें भव के गुण का अभाव है उसे, जिसे भव का परिचय नहीं है उसे... आहाहा! द्रव्य को **(-नित्य शुद्ध आत्मा का)... उसका...**

अर्थात् कौन ? (-**नित्य शुद्ध आत्मा का**)... आहाहा ! उसे अर्थात् नित्य शुद्ध आत्मा। उसे **मैं स्तवन करता हूँ।** मुनिराज कहते हैं कि मैं तो उसका स्तवन करता हूँ। मैं कोई भगवान की स्तुति-विस्तुति को स्तवन नहीं करता। आहाहा ! भव के जो गुण हैं, उनको मैं स्तवन नहीं करता अर्थात् ? उनकी मैं प्रशंसा नहीं करता। आहाहा ! ऐसा जो नित्य शुद्ध आत्मा है, अस्तिरूप है, सत्तारूप है, होनेरूप अनादि-अनन्त है, ऐसी अस्तिपनेवाली चीज़ जो पलटनरहित, पलटती पर्याय में तो भव का भाव है। आहाहा ! उनसे रहित ऐसा जो नित्य शुद्ध आत्मा, उसे **मैं स्तवन करता हूँ।** उसका मैं गुणगान करता हूँ, उसका स्तवन करता हूँ। आहाहा ! गजब श्लोक आया। २०९वाँ गजब श्लोक है। आहाहा ! थोड़े में भी बहुत भरा है। यह २०९ (श्लोक पूरा हुआ)।

श्लोक-२१०

(मालिनी)

इदमिह-मघसेना-वैजयन्तीं हरेत्तां,
स्फुटित-सहजतेजःपुञ्जदूरीकृतांहः।
प्रबलतर-तमस्तोमं सदा शुद्धशुद्धं,
जयति जगति नित्यं चिच्चमत्कार-मात्रम्॥२१०॥

(वीरछन्द)

सहज तेज का पुंज प्रगट कर हर लेता है अघतम को।
पाप सैन्य की उच्च पताका को भी हर लेता है जो॥
यह चैतन्य चमत्कारमय सदा शुद्ध है शुद्ध अहो।
त्रिभुवन में यह परम तत्त्व जयवन्त रहो सर्वदा अहो!॥२१०॥

श्लोकार्थ : सदा शुद्ध-शुद्ध ऐसा यह (प्रत्यक्ष) चैतन्यचमत्कारमात्र तत्त्व जगत में नित्य जयवन्त है—कि जिसने प्रगट हुए सहज तेज पुंज द्वारा स्वधर्मत्यागरूप

(मोहरूप) अति प्रबल तिमिरसमूह को दूर किया है और जो उस *अघसेना की ध्वजा को हर लेता है ॥२१०॥

श्लोक- २१० पर प्रवचन

२१० (श्लोक)

इदमिह-मघसेना-वैजयन्तीं हरेत्तां,
स्फुटित-सहजतेजःपुञ्जदूरीकृतांहः ।
प्रबलतर-तमस्तोमं सदा शुद्धशुद्धं,
जयति जगति नित्यं चिच्चमत्कार-मात्रम् ।।२१०।।

श्लोकार्थ :.... आहाहा! **सदा शुद्ध-शुद्ध ऐसा यह (प्रत्यक्ष)...** जैसा यह कहा न वह ? **यह...** इसका अर्थ **(प्रत्यक्ष)** किया है। यह सदा-शुद्ध। आहाहा! सदा त्रिकाल भगवान द्रव्यस्वभाव **शुद्ध-शुद्ध ऐसा यह (प्रत्यक्ष)...** आहाहा! **चैतन्यचमत्कारमात्र तत्त्व...** यह भगवान आत्मा तो चैतन्यचमत्कारमात्र तत्त्व अल्प क्षेत्र में रहा है। शरीरप्रमाण रहा परन्तु एक समय में तीन काल-तीन लोक को जाने, ऐसी ताकत है। ऐसा चैतन्य-चमत्कार से भरपूर तत्त्व है। दुनिया बाहर के चमत्कार को चमत्कार मानती है। भगवान यह कहते हैं, प्रभु! तेरा चैतन्यचमत्कार ऐसा है कि इस शरीरप्रमाण उसकी अवगाहना—कद-कद भले हो, तथापि उसकी ताकत तो अनन्त काल—तीन काल-तीन लोक को जानने की है। आहाहा! है ?

सदा शुद्ध-शुद्ध... दो बार लिया है। द्रव्य से भी शुद्ध और पर्याय से भी शुद्ध। उसकी पर्याय शुद्ध। कारणपर्याय है, वह शुद्ध है। **ऐसा यह (प्रत्यक्ष)...** आहाहा! **चैतन्य-चमत्कारमात्र तत्त्व...** चैतन्यचमत्कारमात्र अर्थात् जिसका समय एक, उसमें जाने तीन काल, तीन लोक। ऐसा चैतन्यचमत्कार भगवान है। आहाहा! वह वस्तु अन्दर ऐसी है। चैतन्यचमत्कार इतने क्षेत्र में रही है परन्तु उसका ज्ञान तीन काल-तीन लोक को जानता है, वह भी उसे स्पर्श किये बिना जाने, ऐसी ताकतवाला तत्त्व है। ऐसा भगवान आत्मा तू है। आहाहा!

---

* **अघ=दोष; पाप।**

चैतन्यचमत्कारमात्र तत्त्व जगत में नित्य जयवन्त है— देखो! आहाहा! प्रभु! तू जगत में जयवन्त वर्तता है। तेरा कभी अभाव / नाश, हीनता, विकार, वह तुझमें नहीं है। हीनता, विकार, प्रतिकूलता (बिना) सदा अन्दर जयवन्त एकरूप वर्तता है। आहाहा! चैतन्य द्रव्यस्वरूप जो वस्तु एक समय की पर्यायरहित ऐसा सदा जगत में नित्य जयवन्त है। आहाहा! बहुत अच्छी बात आयी है। गाथा भी अच्छी है। वर्तमान एक समय की जो विचार की पर्याय है, वह विचार की पर्याय बदला करती है। परन्तु वस्तु अन्दर जो है, वह ध्रुव है, वह नित्य सनातन, नित्य जयवन्त है। उसका अनित्यपना नहीं। वह तो पर्याय में अनित्यपना है। विचार आदि विचार बदलते हैं, वह पर्याय है, वह अनित्य है। वस्तु है, वह तो त्रिकाल नित्य है। आहाहा!

जगत में नित्य... वापस जगत कहा। इस जगत में वह भगवान आत्मा द्रव्यस्वभाव, वह नित्य जयवन्त वर्तता है। आहाहा! जगत से बाहर नहीं है। जगत के अन्दर है, यहाँ है। आहाहा! पहले सुनना ही कठिन पड़े। अरे रे! और वापस अभ्यास करने की निवृत्ति कहाँ? भव की पर्याय, उसका समूह, ६६३३६ भव एक अन्तर्मुहूर्त में करे, वह पर्याय उसमें नहीं है। आहाहा! उसका दुःख और उसका सुख, वह द्रव्य में नहीं है। आहाहा! भले निगोद के जीव ने इतने अनन्त भव किये और अभी करता है, परन्तु पर्यायरहित वस्तु तत्त्व जो है, वह चीज़ तो जगत में जयवन्त वर्तता है। सदा त्रिकाल वर्तता है। आहाहा!

नित्य जयवन्त (वर्तता) है... आहाहा! वापस ऐसी बात कैसी? उपदेश ऐसा? इसमें क्या करना, इसकी सूझ नहीं पड़ती परन्तु यह अन्दर में वस्तु है, उसमें करना यह सूझ नहीं पड़ती? अन्दर में ध्रुव प्रभु विराजता है, जिसमें भव के भाव का-गुण का अभाव है। ऐसी चीज़ को अन्दर देखने-जानने का प्रयत्न करना, वह पुरुषार्थ नहीं? परन्तु वह पुरुषार्थ सूझता नहीं, सुना नहीं। आहाहा!

जगत में नित्य जयवन्त (वर्तता) है—आहाहा! **कि जिसने प्रगट हुए सहज तेज पुंज द्वारा...** आहाहा! भगवान अन्दर कैसा है? कि **जिसने प्रगट हुए सहज तेज पुंज द्वारा स्वधर्मत्यागरूप...** स्वधर्मत्यागरूप। अपना जो आत्मा आनन्दस्वरूप, ऐसा जो स्वधर्म, उसके त्यागरूप मोह। आहाहा! स्वधर्म के त्यागरूप मोह। आहाहा! स्वधर्म शुद्ध चैतन्यमूर्ति। त्रिकाल आनन्दकन्द जयवन्त—ऐसा जो भगवान आत्मा, उस प्रगट हुए

सहज तेज पुंज द्वारा व्यक्ति प्रगट की, प्रगट हुआ। वस्तु जो द्रव्य में पूर्णता थी, वह अन्दर प्रगट हुआ। अन्दर ध्यान करने से प्रगट पर्याय में प्रगट हो गया।

प्रगट हुए सहज तेज पुंज द्वारा स्वधर्मत्यागरूप... स्वधर्म का त्याग अर्थात् मोह; स्वधर्म का त्याग अर्थात् मिथ्यात्व। आहाहा! स्वधर्म का त्याग... आहाहा! अनादि से स्वधर्म के त्यागरूप मिथ्यात्व। आहाहा! **स्वधर्मत्यागरूप (मोहरूप) अति प्रबल तिमिरसमूह...** अति प्रबल अन्धकार। अज्ञान, पुण्य-पाप, शुभाशुभभाव। अति प्रबल अन्धकार है। आहाहा! यह क्या कहा?—कि अन्तर से चैतन्य का प्रकाश प्रगट हुआ, तब अन्धकार शुभाशुभभाव वह तो अज्ञान है, अन्धकार है। शुभ-अशुभभाव में जानने की ताकत नहीं है। यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध आदि, विषयवासना आदि के विकल्प इनमें उसे जानने की ताकत नहीं है। ये तो अन्धे हैं अन्ध (हैं)। आहाहा!

स्वधर्मत्यागरूप... आहाहा! स्वधर्म के अभावस्वभावरूप मोह। आहाहा! **अति प्रबल तिमिरसमूह को दूर किया है...** ऐसे अति प्रबल अन्धकार के समूह को चैतन्य के प्रकाश से, भगवान अन्दर चैतन्यचमत्कार से भरपूर प्रभु है, उसकी दृष्टि करने पर जो प्रकाश पर्याय में प्रगट हुआ, उस प्रकाश से... आहाहा! **अति प्रबल तिमिरसमूह...** अन्धकार। अति प्रबल-अति अन्धकार को दूर किया है। सूर्य उदित हो और अन्धकार रहे? आहाहा! इसी प्रकार भगवान अन्दर में जागृत हुआ, मैं चैतन्यस्वरूप हूँ। ज्ञान और आनन्द जिसकी दशा में आये। प्रकाश बाहर आया। वह अन्दर में प्रकाश शक्तिरूप से है, वह दृष्टि करने पर बाहर पर्याय में प्रकाश आया। आहाहा! उस प्रकाश द्वारा... आहाहा! **अति प्रबल तिमिरसमूह को दूर किया है...** आहाहा! विकारीभाव, वे मेरे, उनमें रुककर उनकी ध्वजा फिरकती थी। इसलिए उसके कारण चार गति में भटकता था। आहाहा!

यह लश्कर लड़ाई में एक ध्वजा रखते हैं। हार जाए तो वह ध्वजा फाड़ डालते हैं। जीते, वह तो ध्वजा रखता है। यहाँ कहते हैं... आहाहा! **अघसेना की ध्वजा.. अघ=दोष; पाप।** यह पुण्य और पाप दोनों। पुण्य और पाप की सेना की ध्वजा अर्थात् पुण्य और पाप का जो प्रभाव और तेज वर्तता था, उसमें ही मानो सब अनादि से आ गया था, ऐसे तिमिर को द्रव्य के स्वभाव से नाश कर दिया। आहाहा! अरे! ऐसी बातें कहाँ से सुनने को मिले? यहाँ तो पाँच-पच्चीस हजार जहाँ पैदा हो वहाँ ओहोहो! अपने को कुछ लाभ में मिले। लाभ सवाया! दिवाली में लिखते हैं न?

मुमुक्षु : शालिभद्र की ऋद्धि होओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, शालिभद्र की ऋद्धि होओ। अभी कितनी ऋद्धि चाहिए होगी इसे ? अरे ! भगवान ! शालिभद्र की नहीं, आत्मा की ऋद्धि होओ, यह तो कह। आहाहा ! शालिभद्र का ऋद्धि होओ, अमुक ऋद्धि (होओ), ऐसा कुछ बहुत दो-तीन बोल आते हैं।

मुमुक्षु : आत्मा की ऋद्धि बहियों में रही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ कहाँ बहियाँ हैं।

मुमुक्षु : बाहुबली का बल होओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहुबली का बल होओ, शालिभद्र की ऋद्धि होओ। परन्तु तुझे कहाँ जाना है ? ऐसा करके तुझे क्या करना है ? लाभ सवाया। लाभ सवाया लिखे परन्तु वह धूल का। सवाया लाभ हो, ऐसा हो। दरवाजे पर लिखते हैं। दरवाजा हो न अपना दरवाजा ? आहाहा ! वह दरवाजा तुझमें नहीं है। वह दरवाजा मेरा, ऐसा अशुभभाव भी तुझमें नहीं है। आहाहा ! भव के गुणों से प्रभु ! तू खाली है न ! और तेरे गुणों से तू भरपूर है न ? आहाहा ! भव के गुण जो शुभाशुभभाव अनन्त बार किये, ऐसे अनन्त, ऐसे शुभाशुभभाव के गुण से खाली है न, और तेरे अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्दगुण से भरपूर है। आहाहा ! ऐसा तीन लोक के नाथ का कथन है। आहाहा ! परमात्मा जगत को जगाने के लिये यह वाणी है। जाग रे जाग नाथ ! तू अन्धकार में सो रहा है। उस अन्धकार का नाश करने के लिये तैयार हो। इस चैतन्य के प्रकाश के समक्ष अन्धकार नहीं टिकेगा। आहाहा ! दूसरा कोई क्रियाकाण्ड करने से नहीं टिकेगा। चैतन्य का प्रकाश, अन्दर चैतन्यऋद्धि, वह चैतन्य की ऋद्धि अन्दर पड़ी है। अनन्त-अनन्त गुणों की ऋद्धि / सम्पदा पड़ी है। उस सम्पदा के प्रकाश से, उसमें एकाग्र होने पर उसके प्रकाश से मोहतिमिर का जिसने नाश कर डाला है। अघसेना की ध्वजा को लूट लिया है। आहाहा ! वह विकार की ध्वजा सामने पड़ती है, जहाँ हो वहाँ मैं पुण्यवाला हूँ, पापवाला हूँ, मैं सेठिया हूँ, मैं राजा हूँ, मैं वकील हूँ, मैं अधिकारी हूँ, मैं जज हूँ। आहाहा ! मार डाला। अज्ञान की ध्वजा फिरकती (थी), कहते हैं। क्या कहा ?

अघसेना-पाप की सेना की ध्वजा फिरकती थी, उसे हर लिया। आहाहा ! वह चैतन्यस्वभाव अनन्त चमत्कार से भरपूर भगवान के आश्रय से इस अन्धकार को हर

लिया। आहाहा! ऐसा उपदेश। लोग बेचारे ऐसा कहें, सोनगढ़वाले तो निश्चय.. निश्चय.. निश्चय.. व्यवहार की तो बात ही नहीं करते। व्यवहार की बात नहीं करते? व्यवहार खोटा है, ऐसा नहीं कहते? यह शुभाशुभभाव क्या कहा? शुभाशुभभाव के गुण भव के गुण हैं। भव के गुणों का जिसमें अभाव है। आहाहा! परन्तु कभी जिन्दगी सुना न हो, कुटुम्ब परम्परा में मिला न हो। आहाहा! इसलिए उसे कठोर लगता है। बापू! प्रभु! तेरे घर की बात है। तेरा घर अलग प्रकार का है।

अब हम कबहूँ न निज घर आये।
पर घर भ्रमत अनेक नाम धराये॥

'पर घर भ्रमत...' पुण्य और पाप के भाव में 'पर घर भ्रमत अनेक नाम धराये।' सेठ और मूर्ख, देव और नारकी, मनुष्य और ढोर और तिर्यंच... आहाहा! 'अब हम कबहूँ न निज घर आये' निज घर भगवान (आत्मा) अन्दर है, उसमें तू आया नहीं और उस घर बिना बाहर के घर में खेल करके भटक मरा है। आहाहा!

अघसेना की ध्वजा को हर लेता है। आहाहा! सैनिक व्यक्ति होता है न? उसे एक बड़ी ध्वजा होती है। उसमें यदि हार जाए, उसकी ध्वजा फाड़ डाले। जीते, उसकी ध्वजा युद्ध में ऊँची रखे। युद्ध में ऐसा (करते हैं)। यह राणपुर में हुआ था न? राणपुर में हुआ था। किनारे। सेना आयी किनारे। राणा! खेलना छोड़। सेना आयी किनारे। राणा था। वह राणपुर गाँव है। सेना आयी। वह शतरंज का खेल करता था। उसमें एक बारोठ ने आकर कहा, अरे! राणा! खेल छोड़। यह सेना किनारे आयी। किनारे लड़ने आयी है। वह पहुँच गयी। अभी आ जाएगी और लूटेगी। खड़ा हुआ। रानियों को सबको कहा कि यदि मैं वहाँ हार जाऊँ तो मेरी ध्वजा गिर जाएगी परन्तु सहज ऐसा हुआ कि हारा नहीं किन्तु सहज ध्वजा गिर गयी। हारकर नहीं परन्तु सहज गिरी। इसलिए रानियाँ... वहाँ है न सामने? राणपुर में सामने नहीं? गढ़ गढ़ बड़ा। बड़ा कुआँ है, रानी कुएँ में गिरकर मर गयी। अपने राजा हार गये हैं, हमें जीकर क्या करना? वहाँ कुआँ है। मैंने देखा है। एक बार देख आये हैं। जंगल जाते हैं, जंगल जाते हुए वहाँ देखा। सब रानियाँ गिरकर मर गयीं। आहाहा! राणा! खेल छोड़।

इसी प्रकार राजा! आतमराजा! तू बाहर के खेल छोड़। अब मरण किनारे आया।

अब मरण समीप में आया। अब मरने को अधिक समय नहीं है। ५०-५० वर्ष निकाले, उसमें ५० निकलनेवाले नहीं हैं, बापू! आहाहा! वह ध्वजा सहज गिर गयी। इन लोगों को ऐसा हो गया कि अपने राजा हार गये, इसलिए रानी कुएँ में गिरकर मर गयी। आहाहा! सामने है, सामने गढ़ है न। राणपुर नदी के किनारे गढ़ है। वहाँ हमने चातुर्मास किया है।

उस अघसेना की ध्वजा को हर लेता है। आहाहा! चैतन्यचमत्कारी प्रभु आत्मा, चैतन्य हीरा जहाँ अन्दर में नजर में आया, वहाँ आगे अज्ञान की ध्वजा लुट गयी। आहाहा! वह उसकी ध्वजा गिर गयी, अब नहीं रही। उसकी महिमा नहीं रही। अब आत्मा की महिमा आयी। आहाहा! ऐसी आत्मा की महिमा संसार के अभाव का कारण होती है। आहाहा! ऐसे शब्द भी सुने नहीं होंगे। सज्जनभाई! पूरी बात ही दूसरी है, बापू! दूसरी बातें हैं, भाई! क्या करें? आहाहा! लोगों को सूक्ष्म पड़ती है, ऐसा करके नहीं सुनाते। उन्हें भी खबर नहीं होती। सुनानेवालों को भी खबर नहीं होती। आता नहीं। कुछ भी हाँकते हैं। सुननेवाले जय नारायण किया करते हैं। आहाहा!

यहाँ तीन लोक का नाथ जगत में चैतन्यमूर्ति त्रिकाली जयवन्त वर्तता है। इसलिए तू जब देखना चाहे, तब देख सकता है। उसे काल बाधक नहीं है, रोग अवरोधक नहीं है, शरीर बाधक नहीं है, पाप बाधक नहीं है, क्योंकि उसमें वह पाप आदि है नहीं। आहाहा! अरे! हम ऐसे पाप के उदय में कहाँ निवृत्ति लें? वह पाप उसमें है ही नहीं। वह तो निवृत्त -स्वरूप अन्दर पड़ा है भगवान द्रव्यस्वभाव, उसमें जा और पाप की तथा पुण्य की ध्वजा को लूट ले। उसकी सामने महिमा थी, वह लुट गयी और स्वयं सामने होता है, तब उसके भव का अभाव होता है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)